



ISSN: 3049-2017

IJMH 2026; 3(5): 80-83

© 2026 IJMH

www.themultijournal.com

Received: 18-09-2026

Accepted: 01-10-2026

Publish : 03-10-2026

नीरज कुमार

शोधार्थी, योगविज्ञान विभाग,

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-

विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110016

अभ्यास एवं वैराग्य साधना की लोकोपयोगिता

नीरज कुमारDOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.23211038>

शोध सार

भारतीय दर्शन एवं योगशास्त्र में अभ्यास एवं वैराग्य को आत्मसाक्षात्कार की अनिवार्य दो धारणाएँ माना गया है। पतंजलि योगसूत्र में इन दोनों को चित्तवृत्ति निरोध की आधारशिला कहा गया है। यह शोध-पत्र अभ्यास एवं वैराग्य की परिभाषा, उनकी साधना पद्धति और विशेष रूप से समाज में उनके व्यावहारिक उपयोग पर प्रकाश डालता है। आधुनिक जीवन की आपाधापी में मनुष्य मानसिक असंतुलन, तनाव, और नैतिक पतन की ओर अग्रसर है। ऐसे में अभ्यास और वैराग्य की साधना उसे आन्तरिक स्थिरता, मानसिक शान्ति और सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर ले जाती है। इस शोध में इन दोनों की संयुक्त क्रियात्मकता का विश्लेषण कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि अभ्यास एवं वैराग्य केवल आध्यात्मिक लक्ष्य की नहीं, अपितु सामाजिक, मानसिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की कुन्जी हैं।

प्रस्तावना

आधुनिक युग तकनीकी, प्रगति और प्रतिस्पर्धा का युग है। वर्तमान समय में मनुष्य दिन-प्रतिदिन एक के बाद एक सफलता की ऊँचाइयों को छूने के प्रयास में लगा हुआ है। लेकिन इस प्रतिस्पर्धा भरे जीवन की भागदौड़ में मानसिक शान्ति खोता जा रहा है, जिसके फलस्वरूप शारीरिक स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि अधिक पाने की लालसा में निरन्तर काम का दबाव, व्यक्तिगत अपेक्षाएँ और सामाजिक जिम्मेदारियाँ बढ़ती चली जाती है, जिससे कुछ समय पश्चात व मानसिक रूप से भी और शारीरिक रूप से भी अशान्त महसूस करता है। मनुष्य का जीवन अनेक उतार-चढ़ाव से भरा होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने और जीवन में सफलता हासिल करने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहता है। योगदर्शन में अभ्यास और वैराग्य को आत्मसंयम और आत्मविकास के दो प्रमुख स्तंभ बताये हैं। ये केवल आध्यात्मिक उन्नति के साधन ही नहीं, बल्कि सामाजिक और व्यवहारिक जीवन के लिए भी अत्यन्त उपयोगी हैं। इन दोनों को अपनाकर व्यक्ति मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। आधुनिक जीवन में जहाँ लोग तनाव, भौतिक लालसा और मानसिक अस्थिरता से ग्रस्त हैं, वहाँ अभ्यास और वैराग्य एक संतुलित और सुखद जीवन जीने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते हैं। अभ्यास शब्द अंग्रेजी भाषा के practice प्रैक्टिस शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है पुनरावर्ती या यत्न करना।

अभ्यास का अर्थ है - किसी भी कार्य को निरन्तरता के साथ करते रहना जब तक कि उसमें पूर्णता प्राप्त ना हो जाए। किसी विद्या या कार्य को सिद्ध करने के लिए उसके साधनों का अभ्यास अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। अभ्यास के बिना किसी भी कार्य की सिद्धि अथवा कर्म में कुशलता प्राप्त नहीं की जा सकती। गीता में मन के बारे में कहा गया है कि मन बहुत चञ्चल है, इसमें कोई सन्देह नहीं है और यह कठिनता से वश में होने वाला है। श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि हे कुन्तीपुत्र इसे अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जा सकता है।¹ अभ्यास करने से व्यक्ति की तमोगुण वाली प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है, अभ्यास करने से साधना के प्रति एकाग्रता बढ़ती है। अभ्यास साधना को सिद्ध करने में सेतु का कार्य करता है। जैसे बच्चा जन्म के तुरन्त बाद चलना शुरू नहीं करता बल्कि जन्म के तुरन्त बाद से ही उसके जीवन में

Correspondence:**नीरज कुमार**

शोधार्थी, योगविज्ञान विभाग,

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-

विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110016

अभ्यास प्रारम्भ हो जाता है। बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होने से पहले शुरुआत में वह खड़ा होने में संतुलन नहीं बना पाता है। लेकिन वह चलता है गिरता है, फिर उठता है, चलता है गिरता है और फिर उठता है। लेकिन इसी अभ्यास के माध्यम से कुछ समय के पश्चात वह खड़ा होने लगता है, फिर चलने का अभ्यास करता है और ऐसे ही चलने के अभ्यास के साथ-साथ दौड़ना भी शुरू कर देता है। अतः वह अभ्यास ही है, जिसके द्वारा खड़े होने से लेकर दौड़ने तक का सफर तय करता है। मानव जीवन जीने के लिए कुछ भी कार्य करता हो, उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना ही पड़ता है। अभ्यास की यह परम्परा जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू होती है। हितोपदेश में सपष्ट वर्णन मिलता है कि-

अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनं विषम्।

विषं सभा दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम्॥²

अर्थात् - अभ्यास न करने से विद्या विष के समान है, अजीर्ण होने पर भोजन, दरिद्र को सभा और बुढ़े को तरुण स्त्री विष के समान है। इसलिए कहा जा सकता है कि अभ्यास की आवश्यकता जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर होती है, हर क्षेत्र में होती है।

अभ्यास का वर्णन बहुत से यौगिक ग्रन्थों से प्राप्त होता है।

मन को नियन्त्रित करने के लिए अभ्यास का वर्णन मिलता है। ब्रह्मविन्दु उपनिषद् में जीव की मुक्ति के विषय में वर्णित है कि यह मन ही मानव के बन्धन व मोक्ष का कारण है। मन को नियन्त्रित कर लिया तो मोक्ष अगर मन नियन्त्रित नहीं है तो वह विषयों की ओर भागता है, जिसका कारण बन्धन है।³ सभी इन्द्रियों के अपने-अपने विषय होते हैं, जो जीव को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, लेकिन विषयों के प्रति यह आकर्षण समाप्त किया जा सकता है। स्वाध्याय, सत्संगति के अभ्यास से जीव की इस प्रकार की भौतिक विषयों के प्रति आशक्ति समाप्त की जा सकती है।⁴ साधक को साधना के अभ्यास के दौरान कुछ अनुभव सामने आते हैं। साधक को भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुओं में ब्रह्मा की अभिव्यक्ति होती है जैसे- कुहरा, धुआं, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनु, बिजली, स्फटिकमणि और चंद्रमा, ये सब योग साधना की सफलता को स्पष्ट रूप से सूचित करते हैं। इन भिन्न भिन्न प्रकार के अनुभवों से ये बात समझ आती है कि साधक का साधना का अभ्यास ठीक से हो रहा है।⁵ शाडिल्योपनिषद् में अभ्यास की महानता का स्पष्ट वर्णन है कि ध्यान और एकतत्त्व के दृढ़ अभ्यास से प्राण की गति भी बन्द की जा सकती है, अर्थात् प्राण को जीता जा सकता है और बिना परिश्रम पूरक आदि वायु के दीर्घकालीन दृढ़ अभ्यास से ध्यान करने पर मन की गति पूर्णतः बन्द हो जाती है, अर्थात् मन वश में आ जाता है।⁶ **योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।⁷** महर्षि पतंजलि योग को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि चित्त की वृत्तियों का निरोध करना योग है। वृत्तियों से अभिप्राय मन में आने वाले विचार, भावनाओं से है, लेकिन चित्त की वृत्तियों का

निरोध बिना अभ्यास के नहीं हो सकता। इसलिए आगे कहते हैं कि **अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।⁸** अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है। चित्त की वृत्ति का निरोध और साधना सिद्धि कुछ समय में नहीं हो सकती इसके लिए पतंजलि कहते हैं कि **स तु दीर्घकालनैरन्तर्य-सत्कारासेवितो दृढभूमिः।⁹** अर्थात् अभ्यास दीर्घकाल तक लगातार और सत्कारपूर्वक दृढ़ता से करने पर ही चित्त की वृत्ति का निरोध या कोई साधना सिद्ध हो सकती है, बिना अभ्यास के किसी साधना में सफलता हासिल करना कठिन होता है। जब साधक का अभ्यास दृढ़ हो जाता है तो उसके सामने कितनी भी रूकावटें आती हैं तो वह साधना से विचलित नहीं होता है। वह अन्तिम लक्ष्य तक बना रहता है। जो दृढ़ अभ्यास अन्तःकरण में प्रकाशित होता है वही अन्तःकरण रूप हो जाता है।

वैराग्य साधना

भारतीय संस्कृति में वैराग्य को आध्यात्मिक जीवन की नींव माना गया है। 'वैराग्य' का सामान्य अर्थ है - राग का अभाव, अर्थात् विषयों में आसक्ति न रखना। यह केवल त्याग की भावना नहीं, अपितु एक गहन आन्तरिक साधना है, जो मनुष्य को मोह, माया, कामना और वासना के बन्धनों से मुक्त करती है। वैराग्य, एक ओर जहां आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं दूसरी ओर यह लोककल्याण की भावना को भी प्रखर बनाता है। वैराग्य न केवल साधक को आत्मज्ञान की ओर अग्रसर करता है, बल्कि समाज को भी नैतिक और संतुलित बनाता है।

वैराग्य की परिभाषा और स्वरूप - वैराग्य संस्कृत धातु 'रज्' (आसक्ति) में 'वि' उपसर्ग जोड़कर बना है, जिसका अर्थ है विषयों से विरक्ति। यह विरक्ति विवेकपूर्ण होती है, न कि पलायनवादी। वैराग्य का अर्थ यह नहीं कि संसार को छोड़ देना, बल्कि संसार में रहते हुए उसकी क्षणिकता को जानकर उसमें मोह न करना है। आत्मा की उन्नति हेतु किया गया नियत और अनुशासित प्रयास है। वैराग्य इस साधना का मूल आधार है। बिना वैराग्य के साधना केवल कर्मकांड बनकर रह जाती है। जब मनुष्य को संसार की क्षणभंगुरता का बोध होता है, तभी वह आत्मा के स्थायित्व की ओर मुड़ता है। वैराग्य, मन को विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाता है और साधना में स्थिरता प्रदान करता है। जब व्यक्ति इन्द्रियों के माध्यम से जिन पदार्थों को अनुभव कर चुका है जिसमें वह देखे और सुने हुए विषयों से आसक्ति मुक्त हो जाता है, तब यह अवस्था वैराग्य कहलाती है।¹⁰

वैराग्य के प्रकार - वैराग्य को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है: 1. स्मृति जनित वैराग्य (अपरोक्ष वैराग्य)- यह तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति स्वयं अनुभव करता है कि संसार की सभी चीजें नश्वर और अस्थायी हैं। 2. विचार जनित वैराग्य (परोक्ष वैराग्य)-

यह अध्ययन, सत्संग, और गहन चिंतन-मनन से उत्पन्न होता है। व्यक्ति शास्त्रों के ज्ञान और संत-महात्माओं की वाणी से वैराग्य की ओर प्रवृत्त होता है। वही महर्षि पतंजलि भी वैराग्य के दो प्रकार बताते हैं, 1. अपर वैराग्य, देखें हुए और सुने हुए विषयों से तृष्णा रहित हुए चित्त का वशीकरण (नियन्त्रण) कर लेना। यह अपर वैराग्य की स्थिति है। 2. पर वैराग्य, पुरुष दर्शन के अभ्यास से विवेक प्राप्त बुद्धि का गुणों से भी तृष्णा रहित हो जाना। यह पर वैराग्य की स्थिति है।¹¹

वैराग्य का वर्णन विभिन्न यौगिक ग्रन्थों में मिलता है –

ईशावास्योपनिषद् के अनुसार - यह सम्पूर्ण चराचर जगत् इसमें जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादित है, वह सर्वत्र व्याप्त है, इस जगत् का स्वामी है। हम तो केवल उसकी कृपा के कारण प्रकृति का भोग कर रहे हैं।¹² यहाँ साधक को संसार एवं उसमें व्याप्त सभी वस्तुओं से विराग होने का निर्देश दिया गया है, क्योंकि प्रकृति के किसी भी साधन पर हमारा कोई स्वामित्व नहीं है। इसलिए प्रकृति का त्यागपूर्वक उपभोग करने को कहा है। **योगवासिष्ठदर्शनम्** में कहा गया है कि साधक की भोगों के प्रति इच्छा करना बन्धन है और भोगों से वैराग्य होना मोक्ष है। साधक जहाँ - जहाँ से मुक्त होता जाता है, जिन-जिन पदार्थों से लगाव रहित होता जाता है।¹³ मोक्ष प्राप्ति के लिए जो-जो जगत् में सुख देने वाले पदार्थ हो उसे विष व अग्नि के समान देखना चाहिए। मानव जब तक दुःखों से प्रभावित रहेगा जब तक सांसारिक भोगों से विरक्त नहीं हो जाता। **योगशिखोपनिषद्** में स्पष्ट वर्णन है कि मन के चञ्चल रहने पर संसार में गमनागमन होता रहता है और मन के वश में होने के उपरान्त मोक्ष या लक्ष्य की प्राप्ति होती है। वैराग्यवान् व्यक्ति के लिए संसार होते हुए भी उसके लिए संसार नहीं रहता, वह सिर्फ लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अग्रसर रहता है। ऐसा भाव आने की स्थिति ही वैराग्य की स्थिति है। वैराग्यवान् व्यक्ति की इन्द्रियां वश में रहती हैं, जिससे वह राग और द्वेष के त्याग और सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा की भावना से अमृततत्त्व को प्राप्त करता है।¹⁴

वैयक्तिक स्तर पर वैराग्य की उपयोगिता - वैराग्य से व्यक्ति को मानसिक शान्ति मिलती है। इच्छाओं की अनियन्त्रित दौड़ ही तनाव, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा और अवसाद का कारण बनती है। जब व्यक्ति वैराग्य को अपनाता है, तब वह इन विकारों से मुक्त होकर शान्त और संतुलित जीवन जीने लगता है। वैराग्य सिर्फ आत्मसंयम का ही विकास नहीं करता है, बल्कि आन्तरिक शक्ति को भी जाग्रत करता है, भोग के स्थान पर योग की ओर प्रेरित करता है, व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है। एक वैराग्यशील व्यक्ति अपने आचार-विचार में शुद्ध, सरल और सच्चा होता है। ऐसा व्यक्ति अपने जीवन में अनुशासन, विनम्रता और करुणा के गुणों को अपनाता है।

समाज में वैराग्य साधना की भूमिका - जब वैराग्य का अभ्यास व्यापक स्तर पर होता है, तब उसका प्रभाव समाज पर भी पड़ता है। यह प्रभाव कई स्तरों पर देखा जा सकता है, जैसे- नैतिकता और मूल्य आधारित समाज का निर्माण। वैराग्य व्यक्ति को स्वार्थ से हटाकर परमार्थ की ओर ले जाता है। ऐसा व्यक्ति समाज में ईमानदारी, सेवा और समर्पण का सन्देश देता है। जब समाज के नेतृत्वकर्ता वैराग्यशील होते हैं, तब भ्रष्टाचार, शोषण और अन्याय स्वतः समाप्त हो जाते हैं। वैराग्य से व्यक्ति में करुणा और सहानुभूति का जन्म होता है। वह दूसरों के दुःख को अपना समझता है और हिंसा से घृणा करता है। यही भावना अहिंसा का मूल है, जो समाज में शान्ति और सौहार्द को बढ़ावा देती है। वर्तमान समय की सबसे बड़ी समस्या उपभोगवाद है। वैराग्य व्यक्ति को आवश्यकता और लालसा में अन्तर करना सिखाता है। यह सीमित संसाधनों के न्यायसंगत प्रयोग को प्रोत्साहित करता है, जिससे सामाजिक असमानता कम होती है। वैराग्य साधना से जुड़े व्यक्ति जब शिक्षक, नेता या मार्गदर्शक होते हैं, तो वे केवल ज्ञान ही नहीं देते, अपितु जीवन जीने की दिशा भी दिखाते हैं। वे सत्य, अहिंसा, दया और सेवा जैसे मूल्यों को व्यवहार में लाते हैं।

वैराग्य और लोककल्याण का सम्बन्ध - लोककल्याण वही व्यक्ति कर सकता है, जो स्वयं लोभ-मोह से मुक्त हो। वैराग्यवान् व्यक्ति अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज के लिए कार्य करता है, आत्मबल और संयम से प्रेरित होकर सेवा करता है, निष्काम कर्म के माध्यम से समाज को दिशा देता है। ऐसे ही वैराग्यशील ऋषियों, संतों और समाजसेवकों ने भारतीय समाज को नैतिक और सांस्कृतिक चेतना दी है। वैराग्यवान् व्यक्ति जीवन से भागता नहीं, बल्कि जीवन को अधिक जागरूकता और उद्देश्य के साथ जीता है। जैसे कमल जल में रहकर भी उससे अछूता रहता है, वैसे ही वैराग्यवान् व्यक्ति संसार में रहते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता।

निष्कर्ष

अभ्यास और वैराग्य केवल योगी की गुफा तक सीमित नहीं हैं, वे आज के शिक्षक, चिकित्सक, प्रशासक, नेता, छात्र और सामान्य गृहस्थ के जीवन में भी उतने ही प्रासंगिक हैं। ये साधन मानवता को उसकी जड़ें और दिशा दोनों प्रदान करते हैं। जब व्यक्ति अभ्यास से आत्मस्थ और वैराग्य से आत्मस्वतंत्र होता है, तब वह न केवल अपने जीवन को संतुलित करता है, अपितु समाज को भी शान्ति और प्रगति की दिशा में ले जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्ट, पं. रामेश्वर, हितोपदेशः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
2. तीर्थ, ओमानन्द, पातञ्जलयोगप्रदीप, गोरखपुर, गीताप्रेस वि. स० 2074.

3. परमहंस अनन्त भारती, योग उपनिषद् संग्रह, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली,
4. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, मुक्ति के चार सोपान, मुंगेर, बिहार, भारत, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, संस्करण 2013.
5. वी. शास्त्री, आचार्य केशवलाल, उपनिषत्सञ्चयनम्, दिल्ली चौखम्भा प्रतिष्ठान.
6. श्रीमद्भगवद्गीता, गोरखपुर, गीता प्रेस वि० स० 2075.
7. श्रीवास्तव्य, प्रो० सुरेशचन्द्र, पातञ्जलयोगदर्शनम्, वाराणसी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन.
8. शर्मा आचार्य, पं० श्री राम, साधना से सिद्धि भाग- 2, मथुरा, अखण्ड ज्योति संस्थान, दिव्तीय संस्करण 1998.
9. जे.आर. शास्त्री, श्री योगवासिष्ठदर्शनम्, श्री गुरु वाल्मीक सभा, 16-18 फैदरस्टोन रोड, साऊथॉल मिडलसैक्स यू.बी. उत्तराखंड.
10. गोयन्दका ,हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, 2010
11. स्वामी रामदेव, श्रीमद्भगवत गीता गीताअमृत,पतंजलि योग-पीठ (हरिद्वार) 2016

सन्दर्भ

1. गीता, ६/३५
2. हितोपदेश, २३
3. ब्रह्मविन्दु उपनिषद्, २
4. ब्रह्मविन्दु उपनिषद्, ४
5. श्वेताश्वतरोपनिषद्, २/११
6. शाडिल्योपनिषद्, ७/२८
7. योगदर्शन, १/२
8. योगदर्शन, १/१२
9. योगदर्शन, १/१४
10. योगदर्शन, १/१५
11. योगदर्शन, १/१६
12. ईशावास्योपनिषद्, १
13. योगवासिष्ठदर्शनम्, ३/६१/३४
14. योगशिखोपनिषद्, ६/५८-५९